ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

भरतमुनि पूर्व पार्श्व रंगमंच की अवधरणा

नरेन्द्र
हिंदी विभाग, भारती कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

'रंगमंच' एक ऐसी कला है जिसमें कला के सभी विशिष्ट अंगों का समायोजन है, गीत, वाद्य, नृत्य, आलेख, काव्य, वेश–विन्यास और अभिनय आदि ऐसी कोई विध कला नहीं होगी, जो रंगमंच में न हो। सर्वप्रथम भरत ने अपने नाट्यशास्त्रा में यह स्पष्ट कर दिया था कि फकोई ऐसा ज्ञान, ऐसा कोई शिल्प, ऐसी कोई कला, ऐसा कोई योग ;सम्मिश्रणद्ध तथा ऐसा कोई कर्म नहीं है जो इस नाट्य में न हो।य[1]

पार्श्व रंगमंच की अवधरणा

किसी नाटक के मंचन में मंच पर चमत्कार को नमस्कार होता है। किसी नाटक के मंचन में जितना वुफछ मंच पर घटित होता है। मंच पार्श्व में उससे कहीं अध्कि सक्रिय कार्यवुफशलता की जरूरत होती हे। फ्देश और दुनिया में जहाँ–जहाँ नाटक और रंगमंच सक्रिय है, वहाँ–वहाँ मंचपार्श्व का अपना इतिहास भी रहा है कमोवेश और अपनी उलझने तथा समस्याएँ भी रही हैं, साथ ही इस क्षेत्रा में सबकी अपनी–अपनी वुफछ मौलिक सर्जनाएँ भी रही हैं। इस दृष्टि से देखें तो चीन, जापान, भारत और दक्षिण पूर्व एशिया और अप्रफीकी देशों समेत तथा यूनान, इटली, प्रफांस, जर्मनी, स्पेन और यूरोप के स्कैंडेनिवियाई देशों तथा रूस, अमेरिका –लातीनी अमेरिका सहित, मंच पार्श्व का अपना एक लम्बा और विस्तृत इतिहास है, जिसने आधुनिक काल में, नए रूप–क्रम ग्रहण किए हैं।य[2] पार्श्वकर्म इतना विस्तृत है कि जहाँ शायद ही किसी कला या विद्या से दूरी रहती हो। फ्वेशभूषा, आलोक परिकल्पना, मंच डिजाइन ;या मंच–सज्जाद्ध और रंग–संगीत, मुख–सज्जा आदि–आदि के इतने विविध् रूप–रंग, स्पर्श–शास्त्रा और लोक दोनों में दिखाई पड़ते हैं कि यह बात बेहिचक कही जा सकती है कि जो वुफछ हम मंच पर देखते हैं, उससे अध्कि तो नेपथ्य या मंच पार्श्व पर घटित होता है–गतिशील रहता है।य[3] नाट्यशास्त्रा और अन्य ऐतिहासिक सै(ान्ति एवं व्यावहारिक ग्रंथों में भी मंचपार्श्व की तमाम इकाईयों पर चर्चा मिलती है, जिसमें नाटक के पूर्वाभ्यास से लेकर, उस प्रेक्षागृह की बनावट तक को शामिल किया है, जिसमें कोई नाटक मंचित किया जाता है। फ्नाट्यशास्त्रा के पैंतीसवें अध्याय को

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

भूमिकाविकल्पाध्याय कहा गया है। इस अध्याय में भरतमुनि ने दो प्रकरणों का विवेचन किया है– भूमिका विकल्प और भरतविकल्प। भूमिविकल्प में उन्होंने बताया है कि किस तरह के अभिनेता को किस तरह की भूमिका दी जाए। भरतविकल्प में भरतों या नाट्यप्रयोग से जुड़े लोगों को किस्में बताई हैं।

इसी तरह नाट्य की उत्पत्ति पर भी अलग–अलग तरह से विद्वानों ने अपने मत दिये हैं, जिसमें उसके उद्देश्य व पार्श्वकर्म की रूपरेखा भी देखी जा सकती है।

फ्यूनान और रोम की प्राचीन नाट्यशालाओं के खंडहर आज भी उन देशों की नाट्य प्रवृत्तियों का इतिहास थोड़ी बहुत मात्राा में बता सकने में समर्थ हैं किंतु इस प्रकार के मूर्त्त प्रमाणों के अत्यन्त अभाव में हमें केवल अनुमान और आत प्रमाणों पर ही अवलंबित होने के लिये विवश होना पड़ रहा है। यदि हमारे देश में भी स्तूपों, स्तम्भों, मूर्तियों और विहारों के समान प्राचीन नाट्य–शालाओं के खंडहर मिले होते और उनके कक्षों में भी अजन्ता के लेखों के समान वुफछ लेख मिले होते तो हमें प्रमाण के लिये अंधेरे में न भटकना पड़ता है।[4]

हमारे यहाँ तो मध्य भारत के रीवां राज्य में वुफछ प्रमाण मिलते हैं। फ्सरगूजा नामक उपराज्य की दो पहाड़ियों में से एक सीताबेंगरा नामक गुहा में वुफछ प्रतीत होता है कि वहाँ किसी समय प्रेक्षागृह रहा होगा जिसका समय विक्रमाब्द से कम से कम दो सौ वर्ष पहले का बताया जाता है। उसमें जो चित्राकारी है उसके विषय में वुफछ विद्वान यह बताते हैं कि भरत मुनि ने नाट्यशाला में जिस प्रकार की चित्राकारी करने का विधन किया है वैसी ही चित्राकारी इसमें मिलती है।[5]

भरतपूर्व नाट्य मान्यताएँ

पार्श्वकर्म रंगमंच के पार्श्व की गतिविधियाँ हैं जो मंच के तमाम संचालन को निर्धरित करता है। भारतीय इतिहास में नाटकों का उदय संस्वृफत भाषा के विकास के साथ ही हुआ है। विद्वानों के अनुसार वैदिक साहित्य में नाटक के मूल तत्व मौजूद थे। इसलिए अध्कितर विज्ञानों का मानना है कि संस्वृफत नाटक की उत्पत्ति भी वैदिक काल में ही हुई। फविदेशी विद्वान विन्डिश्च, ओल्डेनबर्ग और सिल्वेन लेवी ने माना है कि)ग्वेद में ऐसे संवाद मिलते हैं जिन्हें कला का रूप माना जा सकता है। लेवी ने इसे भारतीय नाट्य विचार का

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

प्रथम रूप माना है। श्रोडेर ने धर्मिक मान्यताओं से संगीत, नृत्य और नाटक का संबंध स्थापित किया है।[6]

इतना भी स्पष्ट है कि रंगमंच की शुरुआत समूचे विश्व में ईश्वर की आराध्ना से हुई है इसमें भारतीय रंगपरंपरा अलग नहीं है। फउत्तर वैदिक काल में इन्द्रोत्सव के समय नाटक का उल्लेख आता है। इन नाटकों का संबंध में इन्द्रोत्सव के समय नाटक का उल्लेख आता है। इन नाटकों का संबंध विष्णु और शिव से रहा है। वृफष्णलीला का संबंध मुख्य रूप से नृत्य से ही रहा है।[7] पार्श्व का एक अनिवार्य अंग नृत्य है जिसे प्रत्येक रंगशैली के रंगकर्मियों ने अपनाया है। नृत्य के नाट्य में उपयोग के अवशेष भरतमुनि से पूर्व भी नजर आते हैं। प)ग्वेद में वुफछ देवता नर्त्तक के रूप में दिखायी देते हैं। इन्द्र भी नृत्य करते हैं और नाटकीय रूप में अपना शौर्य प्रकट करते हैं। श्रोडर के अनुसार वुफछ वैदिक छन्द नृत्यगीत हैं।[8] भरत से पूर्व पार्श्वकर्म या रंगमंच के अवशेष सीधे तौर पर संस्वृफत के आरम्भिक नाटकों पर आधरित हैं। नाट्याशास्त्रा उन सभी अवयवों या रंग गतिविध्यिों का एक क्रमवार संयोजन है। प्रमुख रूप से प्रमाण के तौर पर हमें सिर्पफ भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्रा' ही एक मात्रा ऐसा ग्रंथ मिलता है, जिसमें रंगमंच के पार्श्व ही नहीं अपितु हर बिन्दु पर विस्तार से उदाहरण पूर्ण वर्णन है। फ्पुरातन कथा के अनुसार सबसे पहला नाटक इन्द्रलोक में खेला गया था, जब देवता असुरों को हराकर विजयोत्सव मना रहे थे। पराजित असुरों ने चिढ़कर आसुरी–बल से नाटक में विघ्न डालने के लिए अभिनेताओं की जीभ और मस्तिष्क निष्क्रिय कर दिए। देवराज इन्द्र जो देवलोक का सूत्राधर था, क्रु(हो उठा और उसने अपना जर्जर घुमाया, जिससे सभी राक्षस भयभीत होकर भाग खड़े हुए। उसी समय से इन्द्र देवता रंगमंच का रक्षक माना गया है। नौंटकिए और रासधरिए जब एक गाँव से दूसरे गाँव जाते हैं तो उनकी गाड़ी के साथ आज भी उफंचा झंडा बंध होता था।[9]

हालांकि 'नाट्यशास्त्रा' से पूर्व जितनी भी मिथकथाएँ हैं वह पूरी तरह प्रमाणिक नहीं है क्योंकि तरह–तरह के विद्वानों ने इन मिथकथाओं में भी कई तरह के घाल मैल किये हैं जैसे एक उदाहरण हम यहाँ भी देख सकते हैं फ्संस्वृफत नाटक भिन्न–भिन्न युगों में लिखे गये। कहा जाता है कि त्रोतायुग में जम्बूद्वीप ;भारतवर्षद्ध की सामाजिक स्थिति अव्यवस्थित हो गई थी। शूद्रों के लिए वेद–पाठ वर्जित था। इन्द्र, अन्य देवताओं के साथ

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

ब्रह्मा के पास गये और उन्होंने उनसे निवेदन किया कि किसी ऐसी चीज का सृजन किया जाये जिससे समाज के सभी वर्ग के लोग लाभ उठा सकें। उनकी राय पर ब्रह्मा ने)ग्वेद से पाठ्य, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से कार्यव्यापार ;ऐक्शनद्ध और अथर्ववेद से रस ;कलाद्ध लेकर एक अलग वेद की रचना की जो नाट्यवेद अर्थात् पांचवा वेद कहलाया।य[10] इस सबके बाद भरतमुनि का नाम आता है जिस पर अभी भी वाद–विवाद जारी है कि भरतमुनि एक व्यक्ति है या भरत के सौ पुत्रा। जिनमें उनके शिष्यों, समकालीनों व पूर्ववर्ती और परवर्ती आचार्यों आदि ने इसकी रचना की। भरत ने 'नाट्यशास्त्रा' की रचना का दायित्व लिया, लेकिन महिला चरित्राों का इसमें सर्वथा अभाव ही था।

भरतपूर्व नाट्य में पार्श्वकर्म बहुत वुफछ मिथक ही रहे इसके स्पष्ट प्रमाण कम ही हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि जिन–जिन बातों को भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्रा' में उठाया है उनके छुट–पुट अवशेष उससे पूर्व में जरूर मौजूद रहे होंगे। वरना ऐसा बिल्कुल नहीं है कि भरतमुनि बिना किसी पूर्वानुमान के 'नाट्यशास्त्रा' की रचना करते या उसमें रंगमंच के पार्श्व की चर्चा करते। कथानक और मंचन से जुड़ी वुफछ बातों को हम इस तरह आज भी देखते हैं।

फ्नाटक का कथानक ऐतिहासिक, पौराणिक या काल्पनिक होता था। रंगमंच पर वध, यु(, विवाह, भोजन, मृत्यु आदि के दृश्य वर्जित माने जाते थे। संस्वृफत नाटक अध्किितर सुखान्त होते थे। लेकिन वुफछ नाटक दुखान्त भी थे।य[11] अनुमान के आधर पर ही इस तरह की नाट्य प्रस्तुतियां व नियम से हमें समझना होगा कि किस तरह से पार्श्वकर्म किया जाता होगा। नाटक और पार्श्वकर्म से जुड़े प्रमाण सीधे रूप में भरतपूर्व नहीं मिल पाते। फ्प्राचीन काल में संस्वृफत नाटकों के मंचन के स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। यदि संस्वृफत नाटक अभिनीत किये जाते होंगे तो दर्शक बु(िजीवी वर्ग के ही होते होंगे। इसके वुफछ कारण है कि एक तो अध्किांश नाटकों की विषयवस्तु राजाओं और उनकी प्रेमकथाओं से जुड़ी होती थी जिनमें आम जनता की रूचि नहीं के बराबर होती होगी क्योंकि उनमें मनोरंजन के तत्व का अभाव रहता था। .... ऐसा अनुमान है कि 'अध्किांश संस्वृफत नाटक राजाओं के मनोरंजन के लिए लिखे गये और वैसे नाटकों का मंचन राज उद्यानों में, महलों में या उनकी नाट्यशालाओं में होता होगा।य[12]

भरतपूर्व रंगरूढ़ियाँ

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

भरतपूर्व संस्वृफत भाषा में नाटक हुआ करते थे जिनकी कथा वस्तु राजाओं के जीवन पर आधरित होती या पिफर देवी–देवताओं के चरित्रा कथाओं पर। इन कथाओं के मंचन पर अगर कहीं हास्य या भय आदि के दृश्यों को दिखाया जाता तो उसके लिए मुखौटों ;मास्कद्ध का प्रचलन भरत के 'नाट्यशास्त्रा' से पहले भी था। ये बात जरूर है कि मंच परिकल्पना के स्तर पर भरत पूर्व कोई ठोस आधर या परंपरा नहीं थी खुले मंच पर ही नाटकों का मंचन किया जाता जिसमें किसी भी तरह की विविध्ता न होती। भरतपूर्व के नाट्यों में मंचन स्थल खुले मैदान या मंदिर इत्यादि भी होते आगे चलकर जहाँ रंगमंच थोड़ा विकसित हुआ तब राजाओं की कथाओं के मंचन के लिए राजमहल होते जिन्हें मोटा–मोटी दो हिस्सों में बांट दिया जाता एक बाहरी एक भीतरी। हकीकत में रंगमंच के मंचन स्थल की सही बनावट का निर्धरण भरत ने ही आगे चलकर किया था। फ्यद्यपि भरत ने भी अपने पहले प्रदर्शन खुले में ही मंचित किए थे किंतु वह तुरंत समझ गए कि खुले में प्रदर्शन खुले में ही मंचित किए थे किंतु वह तुरंत समझ गए कि खुले में प्रदर्शन अनायास ही कई बाधओं को जन्म दे देता है। मसलन मौसम की बाध, एक बड़े, जनसमूह को नियंत्रिात करने की व्यवस्था, पात्राों द्वारा अनावश्यक चीख पुकार –ये सारे तत्व कहीं न कहीं भरत के उस सहृदय दर्शक के सौंदर्यबोध को खंडित करते हैं, जिसकी उन्हें अपनी प्रस्तुतियों के लिए अपेक्षा है। यही नहीं, विवृफष्ट माध्यम नाट्यमण्डप की नाप इतनी आदर्श है कि दर्शक को अभिनेता के चेहरे के हाव–भाव और आवाज बहुत ही स्पष्टता से दिखाई और सुनाई देती है।[13]

वुफल मिलाकर हम कह सकते हैं कि भरत से पूर्व पार्श्वकर्म के जितने भी अवशेष मिलते हैं, उनमें केवल आरंभिक रंगमंच के अवयव ही है, जो सहज रूप में उपयोग हुए हैं। भरतपूर्व के रंगमंच में पार्श्वकर्म के लिए कोई ठोस रचनात्मक प्रयास नहीं किए गए, जो प्रयास हुए भी वह भरत के सुझावों के बाद ही हुए। बाकि इतना जरूर है कि भरत ने जितने भी पार्श्वकर्म के संकेत या निर्देश दिये हैं वह पूर्व में अपने अनुभव के आधर पर ही दिये हैं। भरतपूर्व का रंगमंच लचीला था जिसमें बाहरी टीम टाम के लिए अध्कि जगह न थी। कथानक और रंगकर्मी ही उसके केन्द्र में रहा। हालांकि भरपूर्व रंगमंच में पार्श्वकर्म के प्रमाण का गहरा अभाव है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि भरत के 'नाट्यशास्त्रा' से पूर्व

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

के रंगमंच और पार्श्वकर्म ने ही भरत को 'नाट्यशास्त्रा' के लिए पर्याप्त वह रंगभूमि प्रदान की जिस पर भरत का 'नाट्यशास्त्रा' रचा जा सका।

भारतीय रंगमंच की कड़ियाँ हजारों वर्ष पुरानी हैं लेकिन पूरी तरह स्पष्ट नहीं हैं। हाँ लेकिन इतना स्पष्ट है कि वैदिक संवादों के लिखे जाने के समय नाटक का अस्तित्व था। फइन संवाद सूक्तों को अनुष्ठान परक नाटकों के संवादों के रूप में ही लिया गया था। ब्राह्मणों और उपनिषदों में नाट्य–तत्व अध्कि स्पष्ट हो जाते हैं जिसके चलते संवादों का बहुत अध्कि प्रयोग हुआ है। सोमयज्ञ के अवसर पर होने वाला एक लघु परिसंवाद कात्यायन श्रौतसूत्रा ;7–8–25द्ध में प्राप्त होता है। कठोपनिषद् में नचिकेता और यम के बीच जीवन के श्रेयस् और प्रेयस् की चर्चा में, नाटकीय दृश्य का सा विधन है। उपनिषदों में सि(ान्त–वाक्य नहीं प्रस्तुत किए गए वरन् परिचर्चा के रूप में विचार सामने रखे गए हैं।ए[14] इस तरह से हम देखते हैं कि वैदिक कर्मकाण्डों व अलग–अलग तरह के अनुष्ठानपरक नृत्यों आयोजनों में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से नाट्य का जिक्र किया गया है। जिसने अपने भीतर सभी कलाओं का समावेश किया है। फवस्तुतः गान के साथ अभिनय व नृत्य की यह परम्परा हजार–पांच सौ बरस से नहीं चली आ रही। इसका मूल वैदिक युग से भी कापफी पहले उस काल में मिलता है, जब मनुष्य वैदिक जनों से कापफी कम क्षमताओं वाले प्राणी के रूप में अलग–अलग समूहों में प्रवृफति से संघर्ष कर रहा था। इस अविकसित अवस्था में निश्चय ही उसके गान–नृत्य– अभिनय का वह रूप आज मानदण्डों के अनुसार कला नहीं था लेकिन उसमे भविष्य की उस महान परम्परा का शक्तिशाली बीज था, जो शताब्दियों के बाद अभिनय, नृत्य और संगी की अन्तर्ग्रथन कला के रूप मे पल्लवित हुई। यह कला थी नाटक।ए[15]

संदर्भ ग्रन्थ

1. राध वल्लभ त्रिापाठी, संक्षिप्तनाट्यशास्त्राम् पृ. 16–17, वाणी प्रकाशन, 2008
2. प्रयाग शुक्ल, रंगप्रसंग ;पत्रिाकाद्ध, पृ. 2, अंक–7
3. वही, पृ. 2
4. अभिनवनाट्यशास्त्रा ;प्रथम खण्डद्ध, रूप रचना, नाट्य की उत्पत्ति, प्रकाशक प्रधनमंत्राी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद, काशी प्रथम संस्करण, संवत 2008, वि. पृ. 10
5. वही, पृ.10

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)

ISSN 2454-2725
www.jankritipatrika.in

6. डॉ॰ चतुर्भुज, भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, समय प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, पृ. 23
7. डॉ॰ चतुर्भुज, भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, समय प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, पृ. 23
8. वही, पृ. 24
9. बलवन्त गार्गी, रंगमंच, पृ. 30
10. डॉ॰ चतुर्भुज, भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, पृ.24
11. डॉ॰ चतुर्थुज, भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, पृ.48
12. वही, पृ 248
13. देवेन्द्रराज अंकुर, दूसरे नाट्यशास्त्रा की खोज, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ 16
14. इन्दुजा अवस्थी, रामलीला परम्परा और शैलियां, पृ. 16, संस्करण– दूसरा– 2000, राधवृफष्ण प्रकाशन, दिल्ली–51
15. डॉ॰ उमा गर्ग, संगीत का सौंदर्यबोध, पृ. 53

ISSN 2454-2725 www.jankritipatrika.in
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका/ Jankriti International Magazine (बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका/Multilingual International Monthly Magazine)